-: प्रथम अध्याय :-

राष्ट्रीय चेतना : सैद्धान्तिक विवेचन

1. मानव जीवन में चेतनानुभूति
2. राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति
3. राष्ट्र की परिभाषा
4. राष्ट्रीयता का अर्थ एवं स्वरूप
5. राष्ट्रीयता के विविध तत्व
   - (क) भाषा की एकता
   - (ख) जातीय एकता
   - (ग) धार्मिक एकता
   - (घ) सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता
   - (ड.) राजनैतिक एकता
   - (च) भौगोलिक एकता
   - (छ) आर्थिक समानता की आकांक्षा
6. राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

प्रथम अध्याय

राष्ट्रीय चेतना : सैद्धान्तिक विवेचन

1. मानव जीवन में चेतनानुभूति :–

वस्तु जगत के सम्बन्ध में मानवीय चिन्तन की समस्त प्रक्रिया और निष्पत्ति उसकी चेतनानुभूति की परिणाम होती है, चाहे वह सुखात्मक हो या दुःखात्मक। हमारी जीवन–व्यापी प्रत्येक गतिविधि के अन्तराल में किसी न किसी प्रकार की अनुभूति ही क्रियाशील होती रहती है। इस प्रकार चिन्तनशील और अनुभूति प्रवण मानव जीवन के आधार पर ही उसकी चेतना का विकास होता है। वास्तव में चेतना ही पूर्ण एवं यथार्थ मानव की कसौटी है, उसके अभाव में उसकी कोई स्थिति सम्भव नहीं होती। अतः यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि चेतना–विरत व्यक्ति निर्जीव एवं जड़ सदृश है। चेतना पुंज मानवानुराग से ही मिलता है, इसका उन्नत व्यक्तित्व व्यापक क्षेत्रों में विद्यमान है। सौन्दर्यमयी विभिन्न प्रवृत्तियों का आकर्षण चेतना के अभिन्न स्वरूप होते हैं, जो मानव मन को सतत् अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक श्रम से सन्तुलित मानव का अन्तर्मन अनन्त चेतना का आभार बन जाता है। चेतना का कोई न कोई रूप केवल मानवीय ही नहीं वरन् प्रत्येक जीवधारी में मिलता है, चाहे वह गतिशील हो या स्थिर। किन्तु मानवीय चेतना गत्यात्मक होने के साथ–साथ विकासात्मक एवं सर्जनात्मक होती है। इसका मूल कारण मानव की बौद्धिक अथवा वैचारिक क्षमता ही है जिसके चलते मानवीय चेतना में सदैव गति बनी रहती है। बौद्धिकता के कारण ही हमारे विचारों में परिवर्तन होते रहते हैं। मानव मस्तिष्क में सर्वदा नये–नये विचार बनते और विसर्जित होते रहते हैं, जो संकल्प एवं विकल्पजनित विशिष्ट भाव स्थितियों के निर्माण में योगदान दिया करते हैं।

इस प्रकार चेतना एक गत्यात्मक बौद्धिक प्रक्रिया है, जो अनुभूति सापेक्ष होने से निरन्तर गतिमान रहती है। फलस्वरूप शरीर को सामान्य तत्परता प्राप्त होती रहती है। गति के लिए विचारों का होना आवश्यक होता है, तभी चेतना की स्थिति बनी रह सकती है।

यही विचार मानव मस्तिष्क तक पहुँच कर स्थिरता ग्रहण करता है। जिसके कारण वर्तमान विचारों में नवीनता की झलक दिखाई पड़ती है। इन नवीन विचारों के स्थिरता ग्रहण करने में जो क्रिया कार्य करती है मूलतः उसे ही 'चेतना' कहा जा सकता है।

चूंकि मानव मस्तिष्क की धारावाहिक अनुभूति बौद्धिक विज्ञप्ति है जिसके अनुसार नवीन विचारों की सर्जना होती रहती है। अतः संवेदनशील मानवीय अस्तित्व की रचना में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया जाता है।

मानव जो कुछ भी संकल्प या विकल्प करता है उसके मूल में अनुभूति–जन्य बौद्धिकता ही क्रियाशील रहती है। जिस पर उसके विविध मानसिक भावों तथा संवर्गों का घात–प्रतिघात होता रहता है। इससे कुछ समय तक वैचारिक अस्थिरता का होना स्वाभाविक है। किन्तु शीघ्र ही उहापोह की यह स्थिति समाप्त हो जाती है और मानव मस्तिष्क सतत् चिन्तन क्रिया के द्वारा संतुलित होकर निष्कर्ष स्वरूप निश्चित विचार तक पहुँचता है। अतः विचारों के माध्यम से मस्तिष्क–परिष्कार होता रहता है। इस क्रिया के निर्माण में चेतना का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इन विचारों के आधार पर मानव के अन्तर्मन में दो प्रकार की स्थितियाँ दृष्टिगत होती है जो इस प्रकार है :–

1- **दुःखात्मक चेतना की स्थिति**

2- **सुखात्मक चेतना की स्थिति**

जब अनुकूल अथवा अवांछित भाव स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं अर्थात भावनाएं प्रतिकूल होकर अपना प्रभाव डालने लगती है, उस समय मानव मन में दुःखात्मक अनुभूति उत्पन्न होती है। तब उसे 'दुःखात्मक चेतना' कहते हैं। किन्तु जो विचार अनुकूल भावों के माध्यम से मुग्ध कर लेते हैं उन्हें हम सब 'सुखात्मक चेतना' कहते हैं। यदि उपर्युक्त विषय पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि ये स्वरूप मानव जीवन को दो रूपों से प्रभावित करते हैं।

1- **व्यक्तिपरक चेतना**

2- **समष्टिपरक चेतना**

जिन विचारों के माध्यम से व्यक्तिगत सुख या दुःख के भावों की जागृति होती

है, वहाँ व्यक्तिगत या 'व्यक्तिपरक चेतना' कार्य करती है।

जब सुखात्मक या दुखात्मक भावना व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक बन जाती हैं, तो वहाँ 'समष्टिपरक चेतना' क्रियाशील रहती है।

इस प्रकार इन दोनों प्रकार की चेतना का सम्बन्ध क्रियात्मक प्रवृत्तिगत है। जैसा कहा जा चुका है कि चेतना एक गत्यात्मक अनुभूति है, जो सदैव अपने स्वरूप को परिवर्तित करती रहती है। मानव चेतना के बाहुपाश में आबद्ध होकर परिस्थिति के अनुसार महत्ता प्राप्त करता है, किन्तु यह कहना कठिन है कि सबसे सबल और महत्वपूर्ण चेतना कौन सा है? जीवन की सार्थकता विभिन्न कोटि की चेतना के सामंजस्य तथा समन्वय पर निर्भर है। विविध परिस्थितियों एवं समस्याओं के अनुसार ही चेतना का उद्भव, विकास और संस्कार होता है। उसका उदय ज्ञान और क्रिया के बीच से होता है। जब मानव की आत्मा किसी वस्तु या व्यक्ति से अनुराग करने लगती है, उस समय चेतना क्रियाशील होकर अपना निर्माण स्वयं करती है। चेतना का आत्मा से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होता है। इसका तादात्म्य मनुष्य की आत्मा के साथ ही माना जाता है। इससे उत्पन्न भावनाएं 'समष्टि परक' मानी गयी हैं।

अतैव मानव जीवन में चेतना की स्थिति अनिवार्य रूप से स्वीकार की जाती है। चेतना शून्य मानव जीवन, आत्मविहीन शरीर की तरह व्यर्थ हो जाता है। आत्मा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ करता है जिससे मानव जीवन को नवीन प्रेरणाएं प्राप्त होती रहती हैं जिसके फलस्वरूप प्रगति सम्भव होता है। अतः मानव जीवन की भलाई में चेतना का अमूल्य योगदान होता है।

2. राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति :–

समष्टिपरक चेतना में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, कौटुम्बिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आदि विभिन्न चेतना का सपुंजन रहता है। इन सब में राष्ट्रीय चेतना का विशिष्ट महत्व है। इसमें विभिन्न भावनाएं सम्मिलित रहती हैं जिनका अपना पृथक–पृथक अस्तित्व एक साथ समष्टि रूप में सम्मिलित

रहता है । वास्तव में राष्ट्रीय चेतना मानव को जड़, जीव और जगत के प्रति आस्थावान बनाती है।

राष्ट्रीय चेतना के माध्यम से राष्ट्र के समस्त नागरिकों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति, सहकारिता एवं वैचारिक एकता आदि के भाव जागृत होते हैं। राष्ट्र विशेष के एकात्मक मानव कुल के पारस्परिक सुख–दुःख की अभिव्यक्ति इसी चेतना के माध्यम से होती है। राष्ट्रीय चेतना के आधार पर ही शासन सत्ता स्थायित्व ग्रहण करती हुई विकासमान रहती है। यह चेतना मानव की जन्म–जात विरासत है। जब राष्ट्र पर किसी भी प्रकार की आपदा आती है तो उस समय राष्ट्रीय चेतना के सबल भाव का सृजन अपने आप होने लगता है। 'राष्ट्र' की यह सामूहिक चेतना किसी भी दशा में तिरोहित नहीं होती। यदि ऐसा होता है तो राष्ट्र का अस्तित्व संकटापन्न समझ लेना चाहिए। यह भावना परतन्त्र राष्ट्र में तभी उमड़कर अपना प्रभाव प्रकट करती है, जब उसे परतन्त्रता की यातनाएं सहनी पड़ती है। यह न केवल पराधीन राष्ट्र के राष्ट्रिकों में ही उत्पन्न होती है, बल्कि वह स्वाधीन देश में भी पूर्णतः जागृत रहती है। वास्तव में "राष्ट्रीय चेतना उस पौधे का नाम है, जो पराधीन राष्ट्र में ही नहीं पनपता वह स्वाधीन राष्ट्र में भी उतना ही या उससे अधिक हरा–भरा रहता है।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना समष्टिगत चेतना में विशिष्ट है। इसके अन्तगर्त राष्ट्र–हित की भावनाएं सम्मिलित हैं। इससे ही प्रेरित होकर सहानुभूति, एकता और नवजीवन की आकांक्षा आदि भावनाएं क्रियाशील रहती हैं।

3. राष्ट्र की परिभाषा :–

हिन्दी अनुसंधान और आलोचना के क्षेत्र में नव्य से नव्यतर स्थापनाओं में भी अनुसंधायक–समालोचक वेदों से उनका सम्बन्ध बहुतायत से जोड़ते हुए देखे जाते हैं। अपनी संस्कृति का स्मरण और पुनर्प्रतिष्ठा गौरव की बात है, किन्तु स्थापना में सर्वदा इस बात का ध्यान अपेक्षित है कि प्राचीन तथ्यों में उन्हें ही उद्धृत किया जाय, जो

1- हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास – (लेखक– डॉ० क्रान्ति कुमार शर्मा)
प्रस्तावना से उद्धृत, स्वर्गीय माखन लाल चतुर्वेदी का कथन।

आधुनिकतम् परिस्थितियों में भी प्रकाशपुंज का कार्य कर सकें। 'राष्ट्र' शब्द की खोज वेदों, उपनिषदों और पुराणों में भी की जा सकती है। 'पाणिनी' संस्कृत काव्यों में यह शब्द अनेक स्थानों पर आया है। 'मृच्छकटिक'[1] में राष्टीयः शब्द का प्रयोग 'राजा' के लिए हुआ है। अन्य अनेक अर्थों में भी इसके प्रयोग सम्भव हैं। अतः 'राष्ट्र' का रूढ़ अर्थ–विस्तार आज की परिस्थितियों में जितना सम्भव है उसी का विवेचन उचित प्रतीत होता है।

अर्थ की दृष्टि से राष्ट्र शब्द बहुत ही व्यापक है। शास्त्रों में इस शब्द की चर्चा अनेक रूपों में विविध प्रकार से दी गई है। प्रयोग की दृष्टि से यह शब्द प्राचीन है। अंग्रेजी में 'राष्ट्र' शब्द का पर्याय 'नेशन' (Nation) है। नेशन शब्द की व्युत्पत्ति 'नेशियो' (Natio) से हुई है, जो लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है पैदा करना या पैदा होना। यह उसे वंशीय अथवा नैतिक अर्थ प्रदान करता है। इसी शब्दार्थ को ध्यान में रखकर कुछ राजनीतिक विचारकों ने 'राष्ट्र' शब्द का अभिप्राय ऐसे मानव समुदाय के निवास स्थान अथवा प्रदेश से लिया है जिसका आनुवंशिक सूत्र एक ही हो।

सत्रहवीं शताब्दी में नेशन (Nation) 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किसी राज्य की उस जनसंख्या को व्यक्त करने के लिए किया जाता था, जिसमें जातीय–एकता पायी जाती हो।

'बर्नार्ड जोसेफ' का कथन है कि "यह अर्थ अधिकांशतया आज भी कायम है, फ्रान्स की राज्य क्रान्ति के दिनों 'नेशन' शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया और इसका उपयोग 'देशभक्ति' के अर्थ में किया जाने लगा। राष्ट्रिकता (राष्ट्रीयता) उन दिनों एक सामूहिक चेतना थी।"[2]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'राष्ट्र' शब्द संस्कृत के 'रास्ट' से उद्धृत है। उणादि प्रत्ययपूर्वक 'रास्ट' धातु से राष्ट्र शब्द व्युत्पन्न होता है। राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि "पशुधान्य हिरण्यसम्पदराजते शोभते इति राष्ट्रम्। अर्थात पशु, धन, धान्य आदि संपत्तियों से अतिरंजित भूखण्ड या भू प्रदेश ही 'राष्ट्र' कहलाता है।

---

1. शूद्रक – मृच्छकटिकम्, पृष्ट – 362
2. Joseph Bornard - Nationality, Londan, Allen and Unwire. P.P. 20.

'ऐतरेय ब्राह्मण' में राष्ट्र शब्द की व्याख्या इस प्रकार है– "तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ति इति 'राष्ट्राणि' वै विशौराष्ट्रष्यैवनं तत्स्वयमुनमन्ति।"[1]

अर्थात प्रजाजन ही राष्ट्र हैं। प्रजाएं ही स्वयं राष्ट्र का निर्माण करती हैं। अतः वे उसका सम्मान करती हैं।

'शतपथ ब्राह्मण' के अनुसार "श्री वैर्राष्ट्रम्"[2]

अर्थात समृद्धिवान ओजपूर्ण जनसमुदाय ही राष्ट्र कहलाता है।

वैदिक साहित्य में 'राज्य, स्वाराज्य, साम्राज्य, महाराज्य आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। किन्तु इनमें अर्थ गाम्भीर्य की दृष्टि से राज्य 'राष्ट्र' शब्द सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

संस्कृत के आचार्यों ने इन उपर्युक्त शब्दों के विश्लेषण के फलस्वरूप भाषा, भूमि, पशु, पक्षी, धन, सम्पत्ति, जन–समुदाय आदि शब्दों के समूह को राष्ट्र की संज्ञा दी है।

आधुनिक राजनीतिक विचारकों ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए निम्न लिखित विचार दिये है :–

प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक डॉ० अनूप चन्द कपूर के शब्दों में "व्युत्पत्ति की दृष्टि से एक राष्ट्र से अभिप्राय उन लोगों से है जिनका विकास एक नस्ल से हो, फलतः ऐसे लोग जो रक्त सम्बन्धों द्वारा एक राजनीतिक समाज में परस्पर सम्बद्ध हों।"[3]

श्री बर्गेस का मत है कि "एक जन समुदाय जिसकी भाषा एवं साहित्य रीति–रिवाज तथा भले–बुरे की चेतना सामान्य हो, और जो भौगोलिक एकतायुक्त प्रदेश में रहता हो, 'राष्ट्र' कहलाता है"[4]

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण, 40 खण्ड 3 / 261
2. शतपथ ब्राह्मण, पृ० 6/7/3/7/1. Joseph Bornad - Nationality, Londan, Allen and Unwire. P.P. 20.
3. राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त : लेखक – डॉ० अनूप चन्द कपूर
   (संस्करण – 1958 ई०) पृ०सं० – 52
4. "A Population having a common languages and literature common costoms and common coneiousness of right and wrong in haviting a territory of geographical unity."
   J.W.Burgess.
   ' Political science and constitutional low, Vol. I, P.1

जर्मन विचारक व्लंटस्ले ने राष्ट्र की अवधारणा इस प्रकार प्रस्तुत की "राष्ट्र राज्य सूत्रों के बन्धनों की एकता से सम्पूर्णतः निरपेक्ष विभिन्न व्यवसाय एवं सामाजिक स्तर के मनुष्यों का समुदाय होता है, जो परम्परा प्राप्त संस्कारों एवं भावनाओं वाले एक समाज में रहता है, जिसका प्रत्येक सदस्य भाषा तथा आचार के आधार पर अपने समाज के अन्य सदस्यों से अपनी एकता और विदेशियों से अपनी पृथकता का अनुभव करता है।"[1]

श्री उमाकान्त केशव आप्टे ने 'राष्ट्र' स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार किया है। " उस देश को अपना कहने वाले उस परम्पराओं की ओर से आक्रमण होने पर परम्परागत आदर्शों का परिपालन करने हेतु अपनी संस्कृति और परम्परा का अभिमान रखने वाले तथा इस प्रकार एकात्मकता के प्रेमरज्जु से आबद्ध होने के कारण एक दूसरे के उत्कर्ष एवं सुख के हेतु सहकार्य की भावना से कार्य प्रवृत्त होने वाले लोगों का समुदाय हो तो 'राष्ट्र' है।"[2]

डॉ० सुधीन्द्र का मत है– "भूमि, भूमिवासी जन और जन संस्कृति, तीनों के सम्मिलन से 'राष्ट्र' का स्वरूप बनता है।"[3]

संक्षेप में राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है :– वह जनसमुदाय जिसका एक सामान्य भाषा–साहित्य, सामान्य संस्कृति, एकजाति, विदेशियों से सहज पार्थक्य की भावना, आर्थिक जीवन–व्यवस्था, मनःसंरचनात्मक धारणा, एक शासन तन्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की आकांक्षा, एक सामान्य धर्म और राजनीतिक रूप से संघटित एक भौमिक इकाई हो, 'राष्ट्र' कहलाता है।

इस प्रकार राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत 'राष्ट्र' शब्द केवल राज्य सत्ता की सीमा तक मान्य है। राजसत्ता के अन्तर्गत विद्यमान समस्त पुद्गल सहित मानव के सामंजस्य के स्वरूप का नाम ही राष्ट्र है।

---

1. " An union of masses of different occupations and social strata in a heriditary of common spirit feeling and race bound togather especially by language and customs in a common civilsation which
them a sence of unity and distirictiopn from all foreigress quicca part from the bound of the state." **J.K. Blurtschll.** - Theory of the modern state, 3rd. edition, P. 90
2. हमारे जीवन की परम्परा : श्री उमाकान्त केशव आप्टे पृ० सं० – 3-4
3. हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० सं० – 164

4. राष्ट्रीयता का अर्थ एवं स्वरूप :–

'राष्ट्रीयता' एक ऐसी भावना है जिसे कभी भी समाप्त नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार राष्ट्र का सम्बन्ध जन समुदाय और उसकी समान मानसिक प्रतिबद्धता से है, उसी प्रकार राष्ट्रीयता का सम्बन्ध पूर्ण रूप से मानसिक है। अतः इसकी नपी–तुली परिभाषा करना एक दुरुह कार्य है। इसके वास्तविक स्वरूप की जानकारी तब तक सम्भव नहीं है, जब तक साहित्यिक आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठिभूमि की भलीभाँति जानकारी न कर ली जाय। राष्ट्रीयता के ऐतहासिक विकास के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय, परन्तु प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाएगा। पुरातत्व विदों का कहना है कि 'राष्ट्रीयता' मानव के पूर्व की विरासत है। अर्थात यह भावना मानव सृष्टि के पूर्व की रही होगी। आगे चलकर पुरातत्ववादियों ने ही इसकी व्यापकता पर दृष्टि रखते हुए कहा कि यह भावना मानव सृष्टि के पूर्व की है और साथ ही यह केवल मानवीय ही नहीं, वरन् मानवेत्तर जीवों में भी पायी जाती है। इसका दृष्टान्त दृष्टव्य है– एक कुत्ता अपना स्थान छोड़कर अगर भटककर दूसरे स्थान पर पहुँचता हैं तो दूसरे स्थान पर रहने वाले कुत्ते अपने झुण्ड में उस नवागत अपरिचित कुत्ते पर आक्रमण कर देते हैं। इस तरह उस कुत्ते की स्थिति वहाँ सम्भव नहीं रह पाती। फलतः उसे विवश होकर अपने निश्चित भूभाग, पूर्व स्थान पर जाना ही पड़ता है। वे कुत्ते तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ते जब तक वह बाहरी कुत्ता उस स्थान से भागकर अन्यत्र छिप नहीं जाता। इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कुछ विचारकों ने कहा है – "राष्ट्रीयता मूलतः एक मानसिक प्रवृत्ति या भावना है।" इसी विचार को ध्यान में रखते हुए जे० एच० रोज का कहना है कि– "राष्ट्रीयता दिलों की एक ऐसी एकता है, जो एक बार बनकर कभी न बिगड़े।"[1]

डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी का मत है कि– "राष्ट्रीय धारणा स्थूल और संकीर्ण नहीं है, वह सूक्ष्म और व्यापक है। राष्ट्रीयता का सम्बन्ध राजनीति से कभी नहीं रहा। राजनीति की सीधी और तात्कालिक प्रेरणा ग्रहण करने से काव्यात्मक व्यापकता में बांधा पहुँचती है।"२

1. A union of hearts oncs made never unmade. J. H. Rose : Nationality in History. P. 143
2. हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा – भूमिका से उद्धृत – डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन।

राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में सोहनलाल द्विवेदी की प्रशंसा करते हुए नन्द दुलारे वाजपेयी ने स्वदेश पर विशेष बल दिया। "यहाँ राष्ट्रीयता से मेरा आशय किसी राजनैतिक मत या सिद्धान्त विशेषण से नहीं है, यहाँ राष्ट्रीयता से मेरा तात्पर्य स्वदेश प्रेम की व्यापक भावना से है।"[1]

राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक मनोवृत्ति का स्वरूप मानते हुए बी० जोजेफ ने कहा है– "राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक भावना है जो एक ही भूभागों में बसने वालों में पैदा होती है। राष्ट्रीयता मन की वह स्थिति है जिससे राष्ट्र के प्रति व्यक्ति की चरम निष्ठा का पता लगता है। यह परस्पर बन्धुत्व का भाव है, जो राष्ट्र को गौरवान्वित करने में सहायक होता है। सामान्य भाषा, व्यवहार, धर्म आदि के संयोग से राष्ट्रीयता की भावना विकसित होती है। पश्चिम में राष्ट्रीयता का अर्थ उस एक सार्वलौकिक उन्नति भावना के प्रति भक्ति तथा स्थिरता है, जो भूतकाल के गौरव व निराशा की अपेक्षा स्वतन्त्रता, समानता की भावना से युक्त व्यापक भविष्य की ओर उन्मुख होती है।"[2]

राष्ट्रीयता को मानसिक धरातल पर प्रतिष्ठित मानने वाले ए०ई० जिमर्न का कहना है कि "धर्म की भाँति राष्ट्रीयता भी आत्मपरक है, मनोवैज्ञानिक है, मन की एक अवस्था है,एक आध्यात्मिक धारणा है, भावना, विचार और जीवन का एक तरीका है।"[3]

डॉ० भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में " राष्ट्रीयता 'श्रेणीगत चेतना' की एक अनुभूति है, जो एक ओर तो उन व्यक्तियों को जिनमें यह इतनी प्रगाढ़ होती है कि आर्थिक संघर्ष या समाजगत उच्चता–नीचता के कारण उत्पन्न होने वाले भेद–भावों को दबाकर एक सूत्र में बांधे रखती है और दूसरी ओर उनको ऐसे लोगों से पृथक करती है, जो उस श्रेणी में नहीं हैं।"[4]

जे. एच. हेज कार्ल्टन के अनुसार – "सामान्य और ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता ही राष्ट्रीयता है।"[5]

---

1. हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा – भूमिका से उद्धृत – डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन।
2- बी० जोजेफ : नेशनेलिटी इट्स नेचर।
3- ए. ई. जिमर्न : द थर्ड ब्रिटिश इम्पायर, P, 70।
4- हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना : पृष्ठ 7 पर उद्धृत।
5- छायावादी काव्य में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना, पृष्ठ – 22 पर उद्धृत।

आर. एन. गिलक्राइस्ट की परिभाषा अत्यन्त व्यापक है। उनके अनुसार "राष्ट्रीयता एक भावात्मक संवेग या सिद्धान्त है, जो विशिष्ट भूखण्ड की एक ही जाति, एक भाषा, एक धर्म, समान ऐतिहासिक परम्पराओं, समानहितों, समान राजनीतिक संघटन और राजनीतिक एकता के समान आदर्श के साथ किसी विशाल जन समुदाय के बीच उत्पन्न होता है।"[1]

सामान्य अर्थो में राष्ट्रीयता का तात्पर्य देश-प्रेम से है। देश भक्ति और राष्ट्रीयता पर विचार करते हुए कुछ विद्वानों ने कहा है कि राष्ट्रीयता देश भक्ति के आधार पर ही निर्मित होती है और इसका सम्पूर्ण विकास देश भक्ति के अन्तर्गत ही सम्पन्न होता है। इसलिए यह कहना कि देश–भक्ति और देश–भक्त राष्ट्रवादी नहीं हो सकता असत्य है। जो देश भक्त हैं वे अवश्य ही राष्ट्रवादी हैं, क्योंकि यदि देश के प्रति सच्ची भक्ति है तो देश से सम्बन्धित सभी तत्वों के प्रतिश्रद्धा और भक्ति होगी। राष्ट्रीयता का समस्त ताना–बाना भक्ति की सीमा में ही रहता है।

राजशास्त्र विद डॉ० अनूप चन्द के अनुसार "कोई राष्ट्रीयता, एकता और राजसत्ता, पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने पर एक राष्ट्र बन जाती है। जहाँ एक राष्ट्र भिन्न सामाजिक वंश समूहों का बना हो, उनमें से प्रत्येक समूह को 'राष्ट्रीयता' कहा जा सकता है"[2]

वास्तव में राष्ट्रीयता अन्तर्मन की वह प्रबल भावना है, जो परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित होती रहती है। यह 'ऐतिहासिक' परम्परा और 'सांस्कृतिक' एकता के कारण संस्था के जनसमुदाय में एकानुभूति की भावना उत्पन्न करती है। राष्ट्रीयता की परिभाषा बताते हुए आर०जी० गेटेल ने स्पष्ट किया है "राष्ट्रीयता मुख्य रूप से वह मनोवैज्ञानिक भावना है जो उन लोगों में ही उत्पन्न होती है, जिसमें सामान्य गौरव तथा विपत्तियाँ हों, जिनकी सामान्य परम्पराएँ हों, तथा पैत्रिक सम्पत्तियाँ एक ही हों।"[3]

गेटेल की परिभाषा का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक क्षेत्र में तो राष्ट्रीयता के स्वरूप में एकानुभूति की स्थिति सर्वत्र सबल और सक्षम रूप में

---

1. प्रिन्सिपल्स आफ पोलिटिकल साइन्स : P. 26
2. राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त : डॉ० अनूप चन्द कपूर, पृ० सं० 56।
3. आर०जी० गेटेल : पोलिटिकल साइन्स, थर्ड एडिसन, 1954, P - 54.

विद्यमान रही है। परन्तु आर्थिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक क्षेत्र में इसमें विभेद दिखाई पड़ता है। मूलतः 'राष्ट्रीयता' शब्द प्रेरणा मूलक है इसकी स्थिति मानव मनोवृत्ति में दिखलाई पड़ती है।

सी०जे०एच० हेज ने राष्ट्रीयता और देशभक्ति में पर्याप्त अंतर करते हुए लिखा है कि "राष्ट्रीयता जब विशुद्ध देश भक्ति का पर्याय बन जायेगी तब वह मानवता और समस्त संसार के लिए अनुपम वरदान साबित होगी।"[1]

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीयता के उन तत्वों की प्रशंसा करते हैं, जिनसे मानवता का समर्थन होता है। उनके अनुसार "प्रजातंत्र की भावनाओं के विकास के साथ ही राष्ट्रीयता की नवीन विचारधारा का जन्म हुआ है।"[2]

इस तरह राष्ट्रीयता के स्वरूप के प्रति प्रस्तुत विभिन्न विचार सर्वांग तथ्यों को परिभाषान्तर्गत समाहित नहीं कर पाये हैं। कुछ न कुछ अभाव प्रत्येक विचार में दिखलाई पड़ता है। यदि यह कहा जाय कि राष्ट्रीयता मानव की वह मनः स्थिति है जो एक निश्चित वर्ग के प्रति उत्पन्न होती है और वह उस संस्था से इतनी सम्बद्ध रहती है कि उसके निर्माण और विनाश दोनों से प्रभावित होती है तो वह अधिक उपयुक्त होगा।

राष्ट्रीयता का प्रारम्भिक स्वरूप अत्यन्त संकुचित दिखाई पड़ता है। वास्तव में राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय आत्मसम्मान का पर्याय है जो मानसिक धरातल से उत्पन्न होकर एकानुभूति की सृष्टि करती है, जिसमें संगठन, आत्मबल तथा आत्म रक्षा की भावना का प्राधान्य होता है। राष्ट्रीयता के समस्त आयामों को समिष्ट रूप प्रदान करते हुए राजनीतिशास्त्रविद डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि "राष्ट्रीयता एक भावना है। वह मनुष्यों के मानसिक चिन्तन व अनुभूति का प्रमाण है।"[3]

राष्ट्रीयता के सर्वमान्य परिभाषा देते हुए स्व० पं० जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि "विगत उपलब्धियों, परम्पराओं और अनुभावों का सामूहिक स्मरण ही मूल रूप से राष्ट्रीयता है।"[4]

---

1. सी०जे०एच०हेज : एसेज आन नेशनलिज्म, लंदन, मैकमिलन – पेज – 272.
2. हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा : भूमिका से उद्धृत, डॉ० द्विवेदी का कथन।
3. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार–डी० लिट० पेरिस, पु० राजनीतिशास्त्र (राज्य और राज्य शासन) सम्पूर्ण, पृ०सं० 489.
4. पं० नेहरू : डिसकवरी ऑफ इंडिया, पेज – 528.

निष्कर्षतः राष्ट्रीयता एक मानसिक भावना है जो व्यक्तियों को राष्ट्रीयता के सूत्र में तभी आबद्ध करती है जब वे किसी निश्चित भूभाग में स्थायी निवास करने लगते हैं और जिनके रीति–रिवाजों, संस्कारों तथा जीवन के अन्य समस्त क्रिया–कलापों में परस्पर ऐक्य सम्बन्ध होता है। उस समय उनमें परस्पर व्यवहारिक एकानुभूति की सृष्टि होती है। यही एकता का भाव "राष्ट्रीयता" है।

5. राष्ट्रीयता के विविध तत्व :–

राष्ट्रीयता एक सामूहिक, मानसिक और आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति है, परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन आता रहता है। राष्ट्रीय चेतना के निर्माण के लिए राजनीतिशास्त्र के विद्वानों ने कुछ तत्वों का होना आवश्यक बताया है। यद्यपि समय–समय पर परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रीयता के स्वरूप में अन्तर आता रहता है और इन तत्वों में से कोई एक अथवा एक से अधिक भी उस स्वरूप निर्माण के लिए अनिवार्य नहीं होते, परन्तु तत्व की एक निजी व्यवस्था और विशेषता है जो मुख्य अथवा गौण रूप में राष्ट्रीय तत्व के लिए सहायक होती हैं। ये तत्व निम्नलिखित हैं; जिन पर हम संक्षेप में विचार करेंगे।

- ★ भाषा की एकता
- ★ जातीय एकता
- ★ धार्मिक एकता
- ★ सांस्कृति एवं ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता
- ★ राजनैतिक एकता
- ★ भौगोलिक एकता

(क) भाषा की एकता :–

राष्ट्रीयता की अवधारणा के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति या मानव–समुदाय अपने विचारों का परस्पर आदान–प्रदान किया करते हैं। राजशास्त्र के विचारक डॉ० आशीर्वाद का कहना है

कि "सामान्य भाषा का अर्थ एक सामान्य साहित्य, महान विचारों की एक सामान्य प्रेरणा और गीतों तथा लोक गाथाओं की एक सामान्य पैत्रिक सम्पत्ति भी है।"[1]

भाषा की एकता के प्रबल समर्थक डॉ० प्रशान्त कुमार जायसवाल का मत है कि "राष्ट्रीय एकता के निर्माण में भाषा और साहित्य का भी महत्वपूर्ण योग रहता है। ————भाषा धर्मों से ऊपर है, एक युग विशेष की जो भाषा थी उसे समस्त धर्मावलम्बियों ने अपनाया। ——— राष्ट्रभाषा के पद पर वही भाषा आसीन हो सकती है, जिसे बहुसंख्यक समझते हों।"[2]

"भाषा एक माध्यम है जिसके द्वारा जनता एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करती है और अपने आदर्शों तथा संस्कृति की आकांक्षा को एक सामान्य साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करती है।"[3]

इस दृष्टि से किसी भी राष्ट्रीयता के विकास के लिए एक भाषा की अनिवार्यता अपरिहार्य सी लगती है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। एक ही राष्ट्र के भीतर अनेक जातियों और भाषाओं के लोग निवास करते हैं। जातियों एवं भाषाओं की यह भिन्नता उन्हें राष्ट्रीयता–निर्माण में कभी भी बाधा नहीं पहुँचाती।

इस प्रकार निश्चित भूभाग की परम्परागत चलनों का सामूहिक समुदाय के रूप में स्वीकार करने वाली मानव जातियों की अभिव्यक्ति के सर्व सामान्य भाषा के माध्यम द्वारा राष्ट्रीयता का स्वरूप विकसित होता है और संबन्धित मानव कुल में परस्पर वैचारिक और भावात्मक साम्य तथा एकता का अचूक साधन होने के कारण उसका महत्वपूर्ण तत्व मानी जाती है। वस्तुतः समाज एक जीवंत, चेतन, विकासशील और सामूहिक मानव सत्ता की समष्टि है जिसकी निजता के स्पष्टीकरण का सर्वश्रेष्ठ साधन 'भाषा' है। भाषा द्वारा ही उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है, साथ ही पृथक आदर्श भावनाएं और विचार भी होते हैं। उनकी व्यावहारिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों तथा विशेषताओं की अभिव्यक्ति करने वाली

---

1. राजनीतिशास्त्र – डॉ० आशीर्वादम्, पृ० सं० 577।
2. पत्रिका– जीवन साहित्य लेख. भावनात्मक एकताः एक सुझाव लेखक डॉ० प्रशान्त कुमार जायसवाल, पृ० सं० 101 से 102।
3. गेटेल : पोलिटिकल साइन्स, पेज – 109.

भाषाओं द्वारा रचित साहित्य में उनकी समस्त चेतना प्रतिभाषित और प्रतिविंम्बित होती है। अतः भाषा एक ओर उन मानव समुदायों की पृथक सत्ता का आभास देती है और दूसरी ओर उन्हें परस्पर सामाजिक सम्बन्धों में आबद्ध करती है तथा अभिव्यक्ति की एकता द्वारा उनकी निजता को उजागर करती है। भाषा ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से मानव एक दूसरे के निकट आ जाते हैं, उनमें परस्पर घनिष्ठता हो जाती है।

(ख) जातीय एकता :–

मानव इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राष्ट्र की कल्पना के मूल में जातीय एकरूपता की भावना ही बलवती रही है। एकता के अभाव में राष्ट्रीयता की कोई कल्पना सम्भव नहीं है। राष्ट्रीयता के निर्माण में जातीय एकता को महत्व देते हुए राजनीति विचारक श्री ब्रह्म का कथन है "राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने वाले तत्वों में से जातीय एकता की भावना एक ऐसा तत्व है जो उसे सुदृढ़ बनाती है।"

"जाति एक भौतिक तत्व है जबकि राष्ट्रीयता एक ग्रन्थिल तत्व, जिसमें चेतन तत्व प्रवेश करते हैं।"[1]

भौतिक चेतन तत्व अलग–अलग अपूर्ण हैं। भौतिक समवाय के साथ ही चेतन तत्व का सम्बन्ध है, अतः मूल तत्व भौतिक है, जिसमें चेतना स्थान ग्रहण करती है। संबंधों की वृद्धि एवं सघनता पर ही चेतना के विकास की अग्रगामी प्रक्रिया निर्भर करती है। आदिकाल में वैज्ञानिक प्रगति का आधुनिक स्वरूप नहीं था, अतः स्वल्प क्षेत्र के भीतर ही निवास करने वाली जाति अपनी एक राष्ट्रीयता का निर्माण कर लेती थी। वैज्ञानिक साधनों की निरन्तर उपलब्धियों के कारण प्राचीन राष्ट्रीयता की मान्यताएं भी ध्वस्त होनें लगीं। मूल मानव जातियों की खोज का युग आया। अनेक जातियों के एक ही भूखण्ड में निवास करने के कारण उनकी एक सम्मिलित जातीयता होती है, एक जाति यदि दूसरी जातियों से अपने को अधिक बौद्धिक और संस्कृति-निष्ठ घोषित करने लगे तो उनके मन में राष्ट्रीयता का

---

1. R.G. Gettell : Political Science : Page 108.

विकास एक कठिन कार्य हो जाएगा।

सामाजिक दृष्टि से जातीय एकता उस समुदाय को कहते हैं जिनके सदस्यों में एकत्व की प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है। यह प्रवृत्ति स्वीटीजर लैण्ड और कनाडा जैसे देशों में भी सुदृढ़ रूप में देखने को मिलती है, जहाँ विभिन्न जाति के लोग एक सुदृढ़ राष्ट्रीयता का निर्माण कर चुके हैं। इस प्रकार प्रारम्भ में जातीय एकता का स्वरूप अत्यन्त छोटा था, किन्तु धीरे–धीरे विकसित होती हुई क्रमशः दूसरी जाति के निकट सम्पर्क से यह भावना अपेक्षा कृत विस्तृत राष्ट्र का निर्माण करने में सहायक होती रही। परस्पर प्रेरित एवं प्रभावित उन सभी वर्गों में उस राष्ट्र के प्रति एक जातीय भावना का उदय हुआ और उसने विकास करते हुए कालान्तर में एक सबल एवं सुदृढ़ राष्ट्रीयता के स्वरूप को ग्रहण कर लिया।

(ग) धार्मिक एकता :–

डॉ० रामजी उपाध्याय ने समान धर्म को राष्ट्रीयता का पोषक तत्व मानते हुए कहा है कि, "भारतीय धर्म ने समाज और कुटुम्ब की प्रत्यक्ष योजनाएं प्रस्तुत की है। सारे भारत की राष्ट्रीय एकता अप्रत्यक्ष रूप से धर्म ने सम्भव की है, भारतवासियों के लिए भारत के कोने–कोने में तीर्थ स्थान, पुण्यप्रद नदियाँ आदि धार्मिक क्षेत्रों की योजना देश की एकता के लिए हुई।"[1]

पुरातत्वविदों का कहना है कि प्रारम्भिक सामाजिक जीवन का केन्द्र धर्म, रीति–रिवाज और आचार–व्यवहार ही था। पुरातन काल में धर्म राष्ट्रीयता के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व था।

"केवल धार्मिक परिवर्तनों से ही सही मानवीय युगों की विशिष्टता का निर्माण होता है। कोई भी ऐतिहासिक आन्दोलन तभी अनिवार्य बन सकता है जब कि उसकी जड़े मनुष्यों के दिलों में हो। दिल का कोई रूप नहीं है, इसलिए आवश्यक है कि धर्म की भी सत्ता दिल ही के अंदर हो, दिल ही धर्म की मूल वस्तु है।"[2]

---

1. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डॉ० रामजी उपाध्याय, पेज – 481 ।
2. मार्क्स – एंगेल्स : धर्म, पेज – 317।

धर्म कोई आकस्मिक तत्व नहीं है, अपितु समाज के विभिन्न युगों की आस्था–सम्बन्धी उपलब्धियों का पूंजीभूत रूप है। जनता की मानसिक आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न कालों में धार्मिक नेताओं ने धर्मों का प्रवर्तन किया है।

वस्तुतः किसी एक जनसमुदाय या जाति में एक सुनिश्चित धर्म का पालन प्रारम्भ से होता आ रहा है। जहाँ धर्मों में विविधता दिखलाई पड़ती है वहाँ उस जन समुदाय की एकता तिरोहित हो जाती है,साथ ही शक्ति विभाजन भी होना प्रारम्भ हो जाता है।

प्रशान्त कुमार जायसवाल ने अपने लेख 'भावात्मक एकता–एक सुझाव' में इस सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि, "राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक है कि जातीय और धार्मिक आधारों पर निर्मित सम्प्रदायों को पनपने ही न दिया जाय। भारतीय कहने से न हमारा कोई भिन्न धर्म रह जाता है और न भिन्न जाति। मानवता हमारा धर्म हो जाता है और जाति भारतीय।"[1]

इस तरह किसी भी राष्ट्र या राज्य की राष्ट्रीयता तभी अक्षुण्ण रह सकती है, जब उस जनसमुदाय में धार्मिक विलोमता के स्थान पर एकरूपता, परस्पर सम्पूरकता और सह-अस्तित्व की भावना विद्यमान हो।

(घ) सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता :–

जिस भूभाग के जन समुदाय की संस्कृति, रीति–रिवाज व ऐतिहासिक परम्परा समान होती है, वहाँ का निवासी राष्ट्रीय एकता का अनुभव करता है। संस्कृति के विभिन्न उपादानों में जैसे काव्य, कला, संगीत, साहित्य, भाषा, धर्म आदि के माध्यम से जन समुदाय पुष्ट एकता की भावना ग्रहण करता है। फलतः उनमें एकानुभूति का सृजन होता है, जो राष्ट्रीयता के निर्माण में सहायक तत्व है। अमेरिका में जहाँ विभिन्न जाति के लोग निवास करते हैं वहाँ व्यवहार रूप में केवल एक ही संस्कृति को अपना लिया गया है। इसी

1- पत्रिका– 'जीवन साहित्य', लेख– "भावात्मक एकता– एक सुझाव
लेखक– प्रशान्त कुमार जायसवाल पेज नं० 102

प्रकार चीन में धर्मों की विविधता व्यापक रूपों में दिखाई पड़ती है किन्तु संस्कृति एक ही है। यही बात 'रूस' आदि देशों के लिए भी कही जा सकती है।

जो जनसमुदाय दीर्घकाल से एक स्थान पर एक साथ निवसित हैं, वहाँ उनकी ऐतिहासिक परम्परा एक होती है। ऐतिहासिक परम्परा की एकता के कारण ही 'इटली' में राष्ट्रीयता का विकास हुआ। ब्रिटिश प्रशासकों के साथ भारतीयों ने एक लम्बी अवधि तक संघर्ष किया। कांग्रेस के असहयोग एवं सत्याग्रह आन्दोलनों में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी आदि सब ने एक साथ बलिदान दिये। स्वराज्य के लिए बलिदान और त्याग करने वाले क्रांतिकारियों और सत्याग्रहियों के प्रति भारत के विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोगों में एक समान आदरभाव है। ब्रिटिश काल से पूर्व राजपूतों, मराठों व सिक्खों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष किये उन्हें समस्त भारतीय समान गर्व के साथ गौरवपूर्ण स्मरण करते हैं।

प्राचीन भारत के जिन धर्माचार्यों, भिक्षुओं व महात्माओं ने भारतीय धर्म व संस्कृति का दूर–दूर तक विदेशों में प्रचार किया, उनका स्मरण भारतीय बहुत आदर पूर्वक करते हैं।

इस प्रकार यह परोक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है कि भिन्न–भिन्न जाति के लोगों के अंदर भी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महापुरूषों के प्रति आदर रूपी एकता का भाव प्रस्फुटित होता है। जो प्रमाणित करता है कि संस्कृति और ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता का राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

(ड.) राजनैतिक एकता :–

जिन राज्यों में (समुदायों) सुसंगठित राजनीतिक एकता दिखाई पड़ती है वहाँ स्पष्टतः यह स्वाभाविक राजनीतिक आकांक्षा होती है कि हम अपने पृथक राष्ट्र का निर्माण करें। राष्ट्रीय चेतना अपना मूर्त रूप राष्ट्र द्वारा ही प्राप्त करती है। 1917-18 के महायुद्ध के पूर्व 'पोल' लोग जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस इन तीनों राज्यों के आधीन थे। इन तीनों राज्यों के आधीन होते हुए भी 'पोल' लोगों में यह राजनीतिक आकांक्षा

विद्यमान थी कि वे अपना पृथक राज्य बनावें। भारत वर्ष के कुछ मुसलमानों ने भी पाकिस्तान के निर्माण के माध्यम से अपनी राजनीतिक आकांक्षा की पूर्ति की थी। अधिकांश राष्ट्रीयता स्वाधीनता की इच्छा से अपना निजी राज्य चाहती हैं क्योंकि विदेशी या कोई भी अन्य शासक प्रजा की कल्याण की अपेक्षा अपने ही राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखते हुए शासन करता है। विदेशी सत्ता का नियन्त्रण तो एकता की गति को और भी तीव्र बनाता है और अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए प्रजा संगठित हो जाती है तथा राष्ट्रीयता की चेतना का विकास होता है। एक ही सरकार के अधीनस्थ रहकर भिन्न–भिन्न भावनाओं व दृष्टिकोण वाले लोगों में भी एक साथ राष्ट्रीय चेतना की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है।

इसी तथ्य को विचार में आत्मसात् करते हुए पाश्चात्य विचारक 'गिलक्राइस्ट' का कहना है कि, "राष्ट्रीयता के लिए राजनीतिक एकता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और यह इतनी महत्वपूर्ण है कि विभिन्न इकाइयों में से केवल इसी को ही आवश्यक कहा जा सकता है।"

"एक सामान्य राजनीतिक ढ़ांचे में जनैक्य प्रक्रिया ही राष्ट्रवाद का संवर्धन है।"[1]

"राष्ट्रीयता एक जन समुदाय है, जिसके सदस्य ———समान अधिनियमों के अन्तगर्त रहना चाहते हैं और एक राज्य का निर्माण करते हैं।"[2]

"उस प्रत्येक जन समुदाय का यह प्रवृत अधिकार है, जो अपने भाग्य का निर्माण करने के लिए एक राष्ट्रीयता का निर्माण करता है और फलतः वह एक ऐसे राज्य के शासन से स्वतंत्र हो जाना चाहता है, जिसके जुए में उसे अनिच्छा पूर्वक आ जाना पड़ता है।"[3]

प्रथमतः विभिन्न राष्ट्रीय तत्वों से निर्मित जनसमुदाय जब कुछ दिनों तक समान राजनीतिक व्यवस्था के अधीन रह लेता है, तब वह एक राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रभक्ति का विकास कर सकता है।

---

1. Heys cohn. : The idea of Nationalism, Page - 4
2. Garner : Political Science and Goverment, Page - 111
3. Ibid : Page - 111 - 1121

इस प्रकार देखा जाय तो राष्ट्रीयता के लिए राजनैतिक एकता का महत्व नकारा नहीं जा सकता है। इसके द्वारा राष्ट्रीयता के प्रबलतम भाव का सृजन होता है।

(च) भौगोलिक एकता :–

किसी भी देश की राष्ट्रीय-चेतना पूर्ण तभी मानी जा सकती है जब वहाँ वीर नायकों का उदय हो, जो राष्ट्र के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते हों, साथ ही उनके अन्तर्मन में राष्ट्र की भलाई के लिए बलिदान होने तक की अदम्य अभिलाषा हो। एक निश्चित भूभाग के निवासी जन समुदाय में एकानुभूति की भावना सुदृढ़ होती है। इस प्रकार एक सच्चे राष्ट्र के निर्माण हेतु सच्ची राष्ट्रीयता का उद्भव होता है। जिस पर भौगोलिक पर्यावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है। सफल और पूर्ण राष्ट्र वही कहा जा सकता है जहाँ धन, धान्य और अनेक प्रकार की सम्पन्नताएं विद्यमान हों। 'रेम्जेम्योर' ने "भौगोलिक एकता को राष्ट्रीयता का मूल कारण माना है।"[1]

भारत की राष्ट्रीय एकता नामक लेख में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए डॉ० राम सुभग सिंह का कथन है, "किसी भी राष्ट्र की एकता के कुछ लक्षण होते हैं, जिनके आधार पर किसी राष्ट्र को राष्ट्र माना जाता है। इसका प्रमुख लक्षण भूगोल, इतिहास और प्राकृतिक रूपरेखा से सम्बन्धित है। उत्तर में पूर्व से लेकर पश्चिम तक हिमालय का गगन चुम्बी प्राचीर, पूर्व और दक्षिण में बंगाल की खाड़ी, हिन्द महासागर तथा अरब सागर। यह भौगोलिक विभाजन कितना प्राकृतिक और सहज है। उत्तर और पूर्व में सदियों तक मुसलमानों की सल्तनतें रहीं और दक्षिण में चोल, पल्लव, पीड्य, राष्ट्रकूट आदि वंशों का राष्ट्र बना रहा। किन्तु देश की भौगोलिक एकता की भावना पर इन ठोस किन्तु पार्थिव तथ्यों द्वारा कभी ठेस नहीं पहुँचती।"[2]

राजनय विज्ञान में भूखण्ड की अनिवार्यता पर दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। मैजिनी जैसे भावुक विचारकों ने भूखण्ड का होना राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक माना है।

---

1. राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त : डॉ० अनूप चन्द कपूर पेज – 601 ।
2. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 18 अगस्त 1963 ले० डॉ० रामसुभग सिंह पेज– 23 ।

गेटेल और गार्नर ने भूखण्ड की बात को गौण स्थान दिया है। इसके विपरीत रैमेजम्योर और प्रोफेसर हेज ने इसे अनिवार्य तत्व नहीं माना है।

राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीयता के सम्यक विकास के लिए भूखण्ड की आवश्यकता का अनुभव किया है । विखरे हुए इटली के एकीकरण में मैजिनी की महत्वपूर्ण भूमिका है। इनके विचारों का प्रभाव महात्मा गांधी पर भी पड़ा था। उनका कहना है कि "हमारा देश हमारा घर है, उसे ईश्वर ने हमें दिया है, उसने उसमें असंख्य परिवारों को बसाया है, वे परिवार हमें प्यार करते हैं, जिन्हें हम भी प्यार देते हैं, विदेशियों की अपेक्षा हम एक स्वदेशी परिवार को अधिक तत्परता से सहानुभूति प्रदान करते हैं, साथ ही अतिक्षिप्रता और सरलता से उसे समझ लेते हैं।"[1]

भारत वर्ष की अखण्डता युगों पुरानी है क्योंकि भौगोलिक विभाजन प्राकृतिक है और राष्ट्रीयता के मूल तत्वों में से यह भी एक आवश्यक तत्व है।"[2]

इस प्रकार समान आर्थिक और रक्षात्मक एकता के बन्धन राष्ट्र को अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। राष्ट्रीय भावना के उदय होने पर राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखते हुए समानता शब्द भी एक आवश्यक अर्थ रखता है। फलतः राष्ट्र वह सत्ता अथवा शक्ति के रूप में स्पष्ट होता है जो एक निश्चित भूभाग के अन्तर्गत रहने वाले समस्त जन–समूह को एकता के सूत्र में बांध ले और जिसमें एक व्यक्ति का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता वरन् व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्वांकन राष्ट्र के समक्ष रखकर किया जाता है, साथ ही इस संस्था में व्यक्ति, जातिभेद, प्रान्तभेद तथा व्यक्तिगत स्वार्थ को विस्मृत कर एकीकरण की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्र के निर्माण एवं उत्थान में सहयोग देता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता के उदय के लिए भूखण्ड की अनिवार्यता आवश्यक तत्व नहीं है, किन्तु राष्ट्रीयता को सम्यक रूप में ग्रहण करने तथा विकसित करने के लिए किसी भूखण्ड में स्थायी निवास की निःसंशय आवश्यकता है।

---

1. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृष्ठ – 11 पर उद्धृत।
2. राष्ट्रभाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ, उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा कटक, प्रकाशक– राष्ट्रभाषा पुस्तक भण्डार पृ०सं० 14.

(छ) आर्थिक समानता की आकांक्षा :–

एक ही राष्ट्र के भीतर उत्पादन के साधनों पर यद्यपि विभिन्न वर्ग समुदायों के अधिकारों में असमानता होती है, जिसके फलस्वरूप अन्त में सर्वहारा की समाजवादी क्रान्ति का उदय होता है, तथापि राष्ट्र, धर्म, संस्कृति इत्यादि की रक्षा हेतु राष्ट्रनायकों के आह्वान पर प्रत्येक वर्ग के लोग संगठित हो जाते हैं। इस दिशा में आर्थिक आकांक्षा की समानता पूर्णतः एक भावात्मक धारणा है। यदि कहीं विवेक जन्यता है तो केवल इतनी ही कि विदेशी उन्हें दास बनाकर दोहरे शासन की चक्की में पीसने के लिए न डाल दें।

" वह जनसमुदाय, जिसके जीवन के तौर–तरीके और रीति–नीति समान हैं, जिसके उचित–अनुचित की समान धारणा है, जिनकी समान आर्थिक रुचि है और जिसका समान इतिहास एवं धारणाएं हैं तीव्रता से राष्ट्रीय चेतना का विकास करता है।"[1]

इस प्रकार यहाँ यह कहा जा सकता है कि ऐसा जन समुदाय जहाँ राष्ट्र के प्रति भक्ति, आत्म–बलिदान, कर्तव्य परायणता, अनुशासित व्यवहार, विशुद्ध विचारता तथा राष्ट्र सम्मान आदि समस्त गुणों से युक्त एकत्व की भावना का जन्म होता है। मूलतः उसे राष्ट्रीय चेतना कहा जा सकता है। जो राष्ट्र के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है।

6. राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप :–

राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप से तात्पर्य ऐसे प्रेरणा स्रोतों एवं तत्वों से है, जिनके योगदान से एक संगठित राष्ट्र की संरचना होती हो तथा जिसमें 'सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय' की भावना विद्यमान हो। चेतना गत्यात्मक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो सदा एक सी नहीं रहा करती। इसमें स्वतः संसोधन एवं परिवर्तन होता रहता है।

राष्ट्र प्रतिनिधि का चयन रीढ़ राष्ट्रीय चेतना का परिणाम कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें चरित्र, हृदय और श्रद्धा पक्ष महान होना चाहिए जो सूक्ष्म परख की प्रवृत्ति है।

---

1. Gettell : Political Science, Page- 53.

'विश्व-वन्धुत्व' की भावना का संचरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को महत्वपूर्ण बताते हुए व्यक्ति के महत्व को प्रमुखता दी जाती है। इसके साथ ही साथ सार्वभौमिक और सार्वकालिक बलिदान का महत्व प्रत्येक काल में एक सा बना रहता है जिसमें सर्वस्व समर्पण की भावना विद्यमान रहती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि काल एवं स्थिति सापेक्ष के अनुसार राष्ट्रीय चेतना की प्रवृत्ति में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ करता है। कुछ स्वर एवं संकेत सामान्य रूप से प्रत्येक काल खण्डों में बने रहते हैं, जो रूढ़िगत माने जाते हैं। कुछ राष्ट्रों में साम्प्रदायिकता एवं जातिवादिता भी राष्ट्रीय चेतना के प्रवृत्तिगत स्वीकार की जाती है किन्तु यह चेतना केवल उन्हीं राष्ट्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं जहाँ एक जाति, एक धर्म, एक भाषा बोलने वाले लोग हैं। इस प्रवृत्ति को अपवाद रूप में भले स्वीकार किया जाय किन्तु मूल रूप से इसकी स्थापना राष्ट्रीय स्तर पर नहीं होना चाहिए।

हिन्दी साहित्य के कई शोध प्रबन्धों में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप का जो विभाजन मिलता है वह भिन्न काल खण्डों को लेकर है। राष्ट्रीयता के व्यापक परिवेश में राष्ट्रीय चेतना के प्रवृत्तियों का जो स्वरूप जो प्रत्येक राष्ट्र के सम्मुख है अथवा भविष्य में जिन रूपों में निर्मित होता है, उसके समन्वित स्वरूप का निर्धारण यहाँ निम्नलिखित रूपों में किया जा रहा है जो काल स्थिति सापेक्ष होते हुए भी नई उद्‌भावानाओं का प्रकाशन करता है–

- ★ देश प्रेम की प्रवृत्ति
- ★ अतीत गौरव की प्रवृत्ति
- ★ राष्ट्रगौरव की प्रवृत्ति
- ★ त्याग बलिदान एवं समर्पण की प्रवृत्ति
- ★ सांस्कृतिक विकास की प्रवृत्ति
- ★ नागरिक कर्तव्य परायण की प्रवृत्ति
- ★ जन जीवन का चित्रण
- ★ स्वतंत्रता तथा प्रभुसत्ता में अटल विश्वास

- ★ सामाजिक आर्थिक व्यवस्था
- ★ भाषा विषयक धारणा
- ★ सामायिक चेतना का प्रभाव
- ★ देवताओं, महापुरूषों एवं नेताओं का स्तवन
- ★ चारित्रिक नैतिक उत्थान
- ★ सभ्यता के प्रति अनुराग
- ★ राष्ट्रीय एकीकरण की चेतना
- ★ पृथकवादी प्रवृत्तियों के उन्मूलन की चेतना
- ★ नवजात स्वतंत्रता की सुरक्षा सम्बन्धी चेतना
- ★ कुशल राष्ट्रप्रेमी प्रतिनिधि निर्वाचन की चेतना
- ★ योजना निर्माण की चेतना
- ★ औद्योगिक स्थापनाओं से अनुरागित चेतना
- ★ आध्यात्मिक परक चेतना
- ★ रूढ़ियों की प्रतिक्रियात्मक चेतना
- ★ स्वस्थ समाज निर्माण की चेतना
- ★ नई ऐतिहासिक दृष्टि परक चेतना
- ★ विश्लेषण की वैज्ञानिक पैठ
- ★ लौकिक मूल्यों की श्रेष्ठता की चेतना
- ★ धर्म निरपेक्षता की चेतना।
- ★ विवेकवादी दृष्टिपरक चेतना
- ★ व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ परक चेतना
- ★ राष्ट्रीय शिक्षा का स्तर सम्बन्धी चेतना
- ★ विश्व सन्दर्भ : (अन्तर्राष्ट्रीय संवैधपरक चेतना)
- ★ नैतिकता का समर्थन
- ★ अनैतिकता, अराजकता का विरोध

- ★ स्वतन्त्रता के प्रति जागरुकता
- ★ राष्ट्रोल्लास की प्रवृत्तिगत चेतना
- ★ राष्ट्रोत्थान की चेतना
- ★ देशाभिमान परक चेतना
- ★ राष्ट्रीयध्वज का स्तवन
- ★ देश के प्रवृत्ति से प्रेम
- ★ जनश्रम की महत्ता
- ★ राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा
- ★ राष्ट्रद्रोहियों की निन्दा
- ★ सम्प्रदायिकता का विरोध
- ★ सामान्य जनता के प्रति सद्भावनात्मक प्रवृत्ति
- ★ राष्ट्रीय सुरक्षार्थ उद्बोधनगीत
- ★ राष्ट्रीय निधियों के प्रति आस्था
- ★ राष्ट्रगान के प्रति आदर का भाव
- ★ राष्ट्रीय सम्पत्ति के प्रति सुरक्षात्मक प्रवृत्ति
- ★ राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति सम्मान करने की प्रवृत्ति
- ★ राष्ट्रीय पूंजी निर्माण की प्रवृत्ति
- ★ संविधान के प्रति आस्था

राष्ट्रीय चेतना के उपर्युक्त विभिन्न स्वरूपों का सृजन राष्ट्रीय सन्दर्भ में प्रयुक्त होता रहता है। किन्तु इनके प्रयोग की स्थिति समय सापेक्ष एवं काल सापेक्ष हुआ करती है।

किसी भी राष्ट्र के नागरिकों में इन वर्णित राष्ट्रीय चेतना के स्वरूपानुसार अन्तर्मन में जागृत भाव, उनका राष्ट्रीय चेतना कहा जा सकता है। प्रत्येक राष्ट्र के नागरिक अपने राष्ट्र के प्रति इन राष्ट्रीयता के भावों को अपने अन्तर्मन में धारण करते हैं। इन्हीं भावनाओं के अनुरूप स्वराष्ट्र के प्रति चिन्तन करते हैं तथा राष्ट्रीयता के गुणों को अपने

व्यवहार तथा चरित्र में उतारकर अपने आप को राष्ट्र प्रेमी कहलाने का हक प्राप्त करते हैं। हरेक व्यक्ति राष्ट्र के प्रति अपने हृदय में भाव रखता है।

व्यक्ति द्वारा राष्ट्र के अंदर हो रहे उत्थान और पतन की चिन्ता, किसी द्वारा राष्ट्र विरोधी प्रदर्शित व्यवहार की निन्दा करना तथा राष्ट्र के शुभ चिन्तन के भाव को धारण करना ही व्यक्ति का राष्ट्रीय चेतना कहा जा सकता है। राष्ट्रहित के लिए अपने प्राणों की वाजी लगाने वाले राष्ट्रनायकों को सम्मानित दृष्टि से देखना तथा उनको अपना आदर्श मानकर नायक पूजा करना राष्ट्रीय चेतना कहा जा सकता है। राष्ट्रहित के लिए अपने प्राणों की वाजी लगाने वाले राष्ट्रनायकों को सम्मानित दृष्टि से देखना तथा उनको अपना आदर्श मानकर नायक पूजा करना राष्ट्रीय चेतना का ही प्रतिफल है। मानव जन्म लेता है तो एक नवजात् शिशु के रूप में माता से प्रेम करता है। धीरे–धीरे बड़ा होता है, पारिवारिक,सामाजिक सम्बन्धों को समझता है। फिर उनके प्रति भी आदर का भाव व प्रेम प्रदर्शित करता है। यही भाव अवस्था के अनुसार गाँव–प्रेम, क्षेत्र–प्रेम, जाति–प्रेम, राज्य–प्रेम और अन्ततः सम्पूर्ण राष्ट्र–प्रेम के रूप में उसके अन्तर्मन में भाव जागृत हो उठता है और राष्ट्र तथा राष्ट्रहितों से प्रेम करने लगता है।

राष्ट्र के बारें में आज देश का प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तर्मन में एक भाव रखता है। परन्तु राष्ट्र के लिए कुछ करना सबके लिए सम्भव नहीं है। राष्ट्र के लिए तो वही कुछ कर सकता है जो सामाजिक आवश्यक्ताओं से परिपूर्ण होकर अपने को राष्ट्रहित के लिए समर्पित करता है। विद्वजनों का ऐसा कहना भी है कि समाज और राष्ट्र को वही कुछ दे सकता है, जिसकी प्रारम्भिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति हो चुकी हो। यह सत्य भी है कि मानव अपनी प्रारम्भिक आवश्यक्ताओं (रोटी, कपड़ा और मकान) की पूर्ति तथा उसके संसाधन जुटाने में ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है। आज भौतिकतावादी युग में जहाँ आवश्यक्ताएं अनन्त हैं, जिसके पीछे मानव समाज अन्धी दौड़ लगा रहा है। वहीं हमारे देश की अस्सी प्रतिशत जनता जी तोड़ परिश्रम करके भी किसी–किसी तरह से अपने दैनिक जीवन की आवश्यकता पूर्ण कर पाती है। ऐसे में व्यक्ति राष्ट्र व समाज के लिए कितना कर सकता है। यह एक चिन्तन का विषय है।

इसके विपरीत हमारे राष्ट्र के नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना का अभाव नहीं है। व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं के संसाधन जुटाने के साथ साथ अवसर मिलने पर राष्ट्र के लिए मर–मिटने से चुकता नहीं है। जिसका जीता जागता उदाहरण 1999 की 'कारगिल युद्ध' है। जिस समय यह युद्ध चल रहा था हमारे जवान सीमा पर शहीद होकर अपने राष्ट्र के लिए अपने जन्म को सार्थक बना, राष्ट्र की सेवा कर रहे थे। दूसरी तरफ देश का निरक्षर गंवार व्यक्ति जो मजदूरी करके किसी तरह से अपना पेट भर पाता है, उसके मुख से भी यह पूछते हुए पाया गया कि, युद्ध में क्या हो रहा है, क्यों नहीं हमारी सेना उनके घर में घुस कर उनको, उनके किये का मजा चखा रही है। यह प्रमाणित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के दिल में राष्ट्रीयता का पुट होता है। राष्ट्रीय चेतना सबके अन्तर्मन में राज करती है।